भारत का उच्चतम न्यायालय
आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकारान्तर्गत

आपराधिक अपील क्र. 410/2011

मध्यप्रदेश राज्य ..... अपीलार्थी

विरूध्द

मान सिंह ..... प्रत्यर्थी

: न्याय–निर्णय :

न्यायमूर्ति, श्री दीपक गुप्ता :

उक्त अपील में विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या उच्च न्यायालय के मान. न्यायमूर्ति द्वारा धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 में निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए, स्वयं उच्चन्यायालय द्वारा पारित दण्डादेश को संपरिवर्तित किया जा सकता है ?

2. प्रत्यर्थी मानसिंह को भारतीय दण्ड संहिता (भा.द.वि.) की धारा 468, 471 व 419 के अंतर्गत दण्डनीय अपराध को कारित करने हेतु अभियोजित किया गया था। प्रत्यर्थी पर आरोप था कि उसके द्वारा एक अन्य व्यक्ति कालू सिंह के स्थानांतरण प्रमाणपत्र का उपयोग किया गया व स्वयं का नाम व जन्मतिथी दर्शाते हुए एक कूटरचित दस्तावेज तैयार किया। उक्त प्रमाणपत्र को उपयोग में लाते हुए प्रत्यर्थी द्वारा पशुचिकित्सा विभाग में भैंस परिचारक (Buffallo attendeant) के पद पर नियुक्ति उपाप्त की गई। विचारण न्यायालय द्वारा आरोपी को Sec. 468, 471 व 419 (भा.द.वि.) के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध हेतु दोषसिध्द किया गया। दण्ड के प्रश्न पर प्रत्यर्थी को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1958 का लाभ दिया जावे, यह विशिष्ट विनय विचारण न्यायालय के समक्ष

प्रस्तुत की गई थी। विचारण न्यायालय द्वारा उक्त प्रकरण को परिवीक्षा का लाभ देने हेतु उपयुक्त नहीं पाया गया चूंकि अभियुक्त द्वारा कूटरचित दस्तावेज के माध्यम से किसी योग्य बेरोजगार व्यक्ति को रोजगार से वंचित करते हुए यह नियुक्ति प्राप्त की गई थी। अंततः विचारण न्यायालय द्वारा भा.द.वि. की विभिन्न धाराओं के अंतर्गत दण्ड अधिरोपित करते हुए एक वर्ष का कठोर कारावास व रु. 200/– के आर्थिक दण्ड से अभियुक्त को दण्डित किया।

3. अभियुक्त–प्रत्यर्थी द्वारा अपील प्रस्तुत की गई। सत्र न्यायाधीश द्वारा अपील अपास्त की गई। यह पाया गया कि दण्ड के प्रश्न पर प्रकरण में उदारतापूर्वक विचार हुआ है अतः अपील में दण्ड पर हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। एक आपराधिक पुनरीक्षण (क्रिमिनल रिवीजन) याचिका उच्च न्यायालय में प्रस्तुत की गई। उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिध्दी की पुष्टी की गई परंतु मुख्य दण्डादेश को एक वर्ष की अवधि से लघुकृत करते हुए भुगताई गई अवधि तक सीमित कर दिया गया एवं वर्धित आर्थिक दण्ड रू. 10,000/– कर दिया गया।

4. अभियुक्त – प्रत्यर्थी द्वारा आर्थिक दण्ड जमा किया गया पश्चात् धारा 482 द.प्र.स. के अंतर्गत एक याचिका प्रस्तुत की गई व अर्थदण्ड की पूर्ति कर देने व शासकीय सेवा में सेवारत होने के आधार पर परिवीक्षा अधिनियम का लाभ दिये जाने हेतू प्रार्थना की गई। विद्वान न्यायाधीश द्वारा कारणविहीन निम्नलिखित आदेश पारित किया था :–

> *''द्वय पक्षों के अभिभाषकों को सुनने के पश्चात्, प्रार्थना स्वीकार की जाती है एवं अपराधी को परिवीक्षा अधिनियम के अंतर्गत लाभ उस सीमा तक विस्तारित किया जाता है कि भुगताई गई सजा का प्रभाव याचिकाकर्ता की सेवा संबंधी किसी बात पर नहीं होगा । उपरोक्त निरीक्षणों सहित याचिका निराकृत की जाती है, प्रमाणित प्रतिलिपि आज ही प्रदत्त हो।''*

इस आदेश को हमारे समक्ष चुनौती दी गई हैं। प्रारंभ से ही हम यह अंकित करते है कि जिस प्रकार से विद्वान न्यायाधीश द्वारा धारा 482 द.प्र.स. के अंतर्गत याचिका पर विचार किया गया है वह अत्यंत ही अनुचित व अवांछित है। द.प्र.सं. के अंतर्गत न्यायालय को पुनर्विलोकन का कोई अधिकार प्रदान नहीं किया गया है। जैसे ही उच्च न्यायालय ने मूलभूत पुनरीक्षण याचिका (Cr.R) को निराकृत किया, दोषसिध्दी को पुष्ट किया, दण्डादेश को भुगताई गई अवधि तक लघुकृत किया व आर्थिक दण्ड को बढ़ाया, यह निर्णय सम्पूर्णतः समाप्त (functus officio) हो गया एवं इस प्रकार धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत दण्डादेश को परिवर्तित किए जाने हेतु प्रस्तुत याचिका विचार योग्य ही नहीं थी।

5. यह एक स्थापित विधि है कि उच्च न्यायालय को स्वयं के आदेश को पुनर्विलोकित करने का क्षेत्राधिकार धारा 362 अथवा 482 द.प्र.स. के अंतर्गत प्राप्त नहीं है। धारा 482 द.प्र.स. में अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग उच्च न्यायालय द्वारा ऐसे किसी आदेश को परिवर्तित अथवा पुर्नउद्घाटित करने हेतू नहीं किया जा सकता जिसका निराकरण गुणदोषों (*on merits*) के आधार पर कर दिया गया है। गुणावगुण पर प्रकरण निराकृत करने के पश्चात् न्यायालय का अधिकार समाप्त हो जाता है (functus officio) व धारा 362 द.प्र.सं. प्रत्यक्षतः पुनर्विलोकन को प्रतिबंधित करती है व विशिष्ट रूप से उपबंधित करती है कि न्यायालय द्वारा अपने किसी भी हस्ताक्षरित आदेश का न तो पुनर्विलोकन किया जाऐगा और न ही परिवर्तित किया जाऐगा, केवल उन मामलों को छोड़कर जहां लिपिकीय अथवा अंकगणितीय त्रुटि को सुधारने की आवश्यकता हो। न्याय निर्णय का पुनःआव्हान किया जाना परिवर्तन अथवा पुनर्विलोकन की श्रेणी में गणनीय है जिसे धारा 362 द.प्र.स. द्वारा अनुमतित नहीं किया गया है। उच्च न्यायालय द्वारा अपनी अंर्तनिहित शक्तियों का उपयोग कर इसे वैध नहीं बनाया जा सकता ।

6. एतद् द्वारा, हमें यह कहने में संशय नहीं है कि उच्च न्यायालय को उक्त याचिका (अर्न्तगत धारा 482) को सुनकर स्वयं द्वारा पारित दण्डादेश को परिवर्तित करने का अधिकार नहीं था। यह कहना और समीचीन होगा कि परिवीक्षा का लाभ जिस प्रकार दिया गया है वह विधान विरूध्द है। परीक्षण न्यायालय द्वारा परिवीक्षा का लाभ न देने के

कारणों की आख्या की गई है। जब उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिध्दी के विरूध्द प्रस्तुत पुनरीक्षण याचिका (क्रिमिनल रिवीजन) को निर्णित किया जा रहा था, एतद् द्वारा अधिनियम की धारा 4 के अन्तर्गत परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट आहूत कर परिवीक्षा का लाभ प्रदान किया जा सकता था। उक्त स्थिति में भी उच्च न्यायालय द्वारा इस बिन्दु पर युक्तियुक्त कारण दिये जाने चाहिए थे कि क्यों वह दण्डादेश के प्रश्न पर विचारण न्यायालय व अपीलीय न्यायालय से विसम्मत है। वस्तुतः उच्च न्यायालय द्वारा दण्डादेश को लघुकृत कर भुगताई गई सजा तक सीमित कर दिया गया अर्थात् दोषसिध्दी की पुष्टि की गई व दण्डादेश अधिरोपित किया गया। दण्डादेश अधिरोपित व पूर्ण किए जाने के पश्चात् तथा अर्थदण्ड का भुगतान होने के पश्चात्, परिवीक्षा का लाभ दिए जाने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

7. एक अन्य त्रुटि यह भी है कि धारा 4 परिवीक्षा अधिनियम के आज्ञापक उपबंधों का अपवंचन किया गया जिनके अनुसार अभियुक्त को सदाचरण के आधार पर परिवीक्षा का लाभ देने से पूर्व न्यायालय द्वारा परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट प्राप्त किया जाना अभीष्ट है, तत्पश्चात ही न्यायालय द्वारा अभियुक्त को अभिमुक्ति का आदेश, उसके द्वारा प्रतिभूति धारकों रहित या सहित बंध–पत्र भरे जाने, यथा निर्देशित समयावधि में उपस्थित होने व दण्डादेश भुगतने जो कि तीन वर्ष से अधिक न हो अथवा जैसा न्यायालय निर्देशित करे एवं उक्त समयावधि में शांति तथा सदाचरण बनाए रखने की शर्तों सहित, दिया जा सकता है।

धारा 4 की उपधारा (1) स्पष्ट उपबंधित करती है कि न्यायालय तब तक अभिमुक्ति का आदेश पारित नहीं कर सकती जब तक कि वह संतुष्ट न हो कि अपराधी अथवा उसका प्रतिभूतिधारक किसी निश्चित जगह पर आश्रय लेता हो अथवा उसके आजीविका उपार्जन का स्थान न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आता हो। उपधारा (2) यह उपबंधित करती है कि उपधारा (1) के अधीन आदेश जारी करने से पूर्व न्यायालय परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट पर विचार करेगा । अपने अन्यान्य निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि परिवीक्षा का आदेश प्रदान करने से पूर्व संबंधित

परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट प्राप्त करना अत्यावश्यक हैं। इस संदर्भ में **एम.सी.डी. विरूध्द देहली राज्य व अन्य** अवलोकनीय है।

8. प्रस्तुत प्रकरण में अभियुक्त–प्रत्यर्थी द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण (क्रिमिनल रिवीजन) में पारित दोषसिध्दी के विरूध्द विशिष्ट अनुमति याचिका (SLP) प्रस्तुत करने हेतु दिनांक 03.01.2011 को समय चाहा गया। SLP प्रस्तुत की गई परंतु 28.01.2011 के आदेश द्वारा निरस्त की गई। एक बार SLP निरस्त हो जाने के पश्चात् हम किसी प्रकार की सहायता अभियुक्त–प्रत्यर्थी को प्रदान नहीं कर सकते।

9. हम यह अवलोकन करने हेतु भी विवश हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा अपने आदेश में यह निर्देशित किया है कि दण्डादेश जो अभियुक्त द्वारा पहले ही भुगता जा चुका है, उसकी सेवाओं पर प्रभावकारी नहीं रहेगा। हम समझने में असमर्थ है कि किस अधिकार के अंतर्गत उच्च न्यायालय द्वारा इस प्रकार का आदेश पारित किया जा सकता है। ऐसी अवस्था में भी जहां परिवीक्षा प्रदान की गई है, न्यायालय को यह क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है कि वह कर्मचारी को सेवा में बनाऐ रखने हेतु आदेश पारित करे। इस न्यायालय द्वारा **स्टेट बैंक ऑफ इंडिया व अन्य विरूध्द पी. सुप्रमाणियन** में स्पष्ट रूप से अवधारित किया है कि परिवीक्षा का लाभ देने का संबंध/प्रभाव कर्मचारी की सेवाओं से नहीं हैं। इस न्यायालय द्वारा कहा गया है कि कर्मचारी इस आधार पर सेवा निरंतरित रखने का अधिकार नहीं मांग सकता कि उसे परिवीक्षा पर अभिमुक्ति दी गई हैं। यह अवलोकनीय है कि :

'परिवीक्षा पर अभिमुक्ति किसी कर्मचारी को यह अधिकार प्रदान नहीं करती कि वह सेवा में निरंतर रहने के अधिकार का दावा करे, वस्तुतः नियोक्ता उस कर्मचारी की सेवाऐं समाप्त करने हेतु बाध्य है जिसे ऐसे अपराध हेतु दोषसिध्द किया गया हो जिसमें नैतिक अधमता निहित हो। आपराधिक न्यायालयों द्वारा किए गए अवलोकन नियोक्ता पर बाध्यकारी नहीं है जिसे अपने कर्मचारी से उपयुक्त संव्यवहार करने की स्वतंत्रता हो।''

10. प्रस्तुत प्रकरण में अभियुक्त द्वारा कूटरचित दस्तावेजों के आधार पर रोजगार प्राप्त किया गया है। यदि उसे अधिनियम का लाभ दिया भी जाता तदनंतर भी वह अपनी सेवाऐं बरकरार नहीं रख सकता था चूंकि वह रोजगार उसके द्वारा कूटरचित दस्तावेजों के माध्यम से हस्तगत किया गया था। हम इस प्रकार का अवलोकन करने हेतु विवश है कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रकरण में सन्निहित विधिक मुद्दों पर विचार किए बिना ही एक यंत्रवत् व पाण्डित्य प्रदर्शक शैली का आदेश पारित किया हैं।

11. उपरोक्त अनुसार अपील स्वीकृत की जाती है एवं उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त किया जाता हैं। अनिर्णित अर्न्तवर्ती आवेदन यदि कोई हो, निराकृत समझे जावेंगे।

..... न्यायमूर्ति
(दीपक गुप्ता)

..... न्यायमूर्ति
(अनिरूध्द बोस)

नई दिल्ली,
04 नवम्बर, 2019

Disclaimer :- The translated judgment in vernacular language is meant for the restricted use of the litigant to understand it in his/her language and may not be used for any other purpose. For all practical and official purpose, the english version of the judgment shall be authentic and shall hold the field for the purpose of execution and implementation.

प्रत्याख्यान :– स्थानीय भाषा में अनुवादित न्यायनिर्णय मात्र पक्षकारों को उनकी भाषा में समझने पर्यन्त ही सीमित है एवं किसी अन्य उद्देश्य हेतु उपयोगार्थ नहीं है। सभी व्यवहारिक एवं कार्यालयीन उद्देश्यों हेतु, न्यायनिर्णय के आंग्लभाषा संस्करण को ही प्रामाणिक माना जावेगा तथा निष्पादन एवं क्रियान्वयन हेतु प्रभावी माना जावेगा।

Translated by :

Prachiti Taranekar
(J. J. Translator)
Highcourt of M.P.
Indore (M.P.)